जेण्डर एवं गैर बराबरी के प्रश्न

'डॉ॰ करूणा पाण्डेय

पिछले तीन दशकों से समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक नया आयाम स्थापित हुआ है। इस आयाम का संबंध विश्व स्तर पर महिलाओं के संबंध में चिन्ता के साथ जुड़ा हुआ है। सभी समाजों में महिला प्रस्थिति के संबंध में अब विचार बढ़े हैं और अब यह अनुभव व्यक्त किया जाने लगा है कि पुरुष और महिला के संबंध असमानता के आधार पर निर्धारित हैं। इसी सोच ने अब आन्दोलनों को भी जन्म दिया है जो आज महिला आन्दोलन (Gender Movement) कहे जाते हैं। महिलाओं के इन आन्दोलनों ने महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों को ध्यान में रखा है। इन आन्दोलनों का एक मत सदैव प्रभावशाली रहा है कि महिला को समाज में अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। महिला स्वातंत्र्य आन्दोलन (Women Liveration Movement) ने अपने मुद्दे भी तय किये हैं। इन मुद्दों में उन प्रतीकों को भी शामिल किया गया जिसका संबंध महिलाओं की परतंत्रता के साथ जुड़ा हुआ था। विश्वव्यापी स्तर पर आधुनिकता के संदर्भों ने भी महिलाओं के अपने आधार प्रस्तुत किये और महिलावाद जैसी विचारधारा उत्पन्न की। 1960 में महिलाओं के जो भी आन्दोलन चले वे वस्तुतः महिलावाद के प्रारम्भ थे। एक तरह से ये आन्दोलन उस साहित्य का फलीभूत भी थे जो इन आन्दोलनों के पहले वह लिखा गया था। इस साहित्य में महिलाओं की असमानता का उल्लेख किया गया था और उसे हटाने के लिए सुझाव भी दिए गये थे। बाद में पुरुष द्वारा रचित साहित्य की महिलावादी आलोचना हुई और यह कहा जाने लगा कि पुरुष ने जो साहित्य रचा है वह महिलाओं को असमानता में बाँधने का ही प्रयास है।[1] बाद में उत्तर आधुनिकतावादियों ने भी महिलाओं के आन्दोलनों के नये प्रकार के आन्दोलनों के रूप में स्वीकार किया जिनके अपने ही मुद्दे थे। उत्तरआधुनिकतावादियों के लिए महिला आन्दोलनों के बीज आधुनिक संदर्भों में मौजूद थे। महिलाओं की प्रस्थितियों की नई संरचना आधुनिकता के अर्थों में स्वीकार की जाती थी। आधुनिकता के संकेतांकों में भी इसका समावेश किया गया था।

समानता और असमानता :

भारतीय समाज में तथा विश्वव्यापी स्तर पर महिलाओं के प्रश्न को असमानता के साथ जोड़ा गया है, अतः यह आवश्यक है कि समानता और असमानता के संदर्भों को अवधारणात्मक आधार पर समझने का प्रयास किया जाए। आधुनिक समाजों में समतावादी समाज की कल्पना अथवा उसको साकार करने के प्रयत्न स्वीकार किये गये हैं। समस्त विश्व में बौद्धिक चर्चाएँ प्रायः ऐसे समाजों की कल्पनाओं के साथ जुड़ी हुई जिनका संबंध समतामूलक समाज से है। असमानताओं का संदर्भ दो प्रकारों के स्वरूपों से है – एक स्वभाविक असमानता तथा दूसरी संरचनात्मक आधार पर उत्पन्न की गई असमानता।[2] समानता के बारे में विद्वानों का यह भी मत है कि सामाजिक मूल्यों को इस प्रकार से समन्वयित करना चाहिए जिससे कार्यों की समानता स्थापित हो सके। समानता बहुत से सामाजिक मूल्यों में से एक है जिनका संबंध अन्य लक्ष्यों के साथ जुड़ा हुआ है और जो कमोवेश किन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित करने के प्रयत्नों के साथ जुड़ी हुई है।[3]

शाब्दिक अर्थों के आधार पर समानता का संदर्भ अन्ततः समतामूलक समाज की स्थापना है जिसमें राज्य के सभी नागरिकों के समान अधिकार तथा समान प्रतिष्ठाएँ होगीं। तुलनात्मक दृष्टि से किसी भी आधार पर चाहे वह प्रजाति हो, महिला हो, कार्य हो, आयु हो अथवा कोई भी पृष्ठभूमि हो, राज्य व्यवहार की दृष्टि से वे सब समान होंगे। एक प्रकार से समानता का संदर्भ कानूनी समानता के साथ जुड़ा हुआ है।[4] समता का यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार घोषण पत्र में भी उठाया गया है। भारतीय संविधान में भी इस देश के नागरिकों में पारस्परिक भेदभाव को नकारा गया है। संविधान के अनुसार इस देश के नागरिकों के साथ धर्म, जाति, प्रजाति, निवास स्थान एवं महिला और पुरुष के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। इस समानता को प्राप्त करने के लिए नागरिकों को मूलभूत अधिकार दिये गये हैं और समान अवसरों की व्यवस्था का प्रयत्न किया गया।[5] समानता के इन संदर्भों को असमानता की अवधारणात्मक व्याख्या से भी समझना होगा। असमान पुरस्कार अथवा अवसर जो किसी समाज या समूह में विभिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न हैं, असमानता की व्याख्या के साथ जुड़े हुए हैं। यदि समानता का संदर्भ कानूनी समानता से है तो असमानता मानवीय परिस्थितियों का एक अभिन्न अंग है, विशेष रूप से आधुनिक समाजों में बहुत सी बहसें इसी प्रकार की असमानताओं के साथ जुड़ी हुई है। उदारवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा, प्रकार्यवादी विचारधारा और कुछ सीमा तक उत्तर आधुनिकता ने भी समाज में व्याप्त इन असमानताओं को अपना आधार बनाया है।[6]

प्लेटो का यह समाज वर्ग संरचना के साथ जुड़ा हुआ था और प्लेटो यह मानते थे कि प्रत्येक वर्ग के लिए आचरण के सुनिश्चित नियम तथा प्रत्येक वर्ग के लिए सुनिश्चित भूमिका हो। प्लेटों का यह समाज संस्तरण वाला समाज था जिसमें समाज की असमानता अपरिहार्य थी।[7]

अरस्तू ने भी यह माना था कि बुद्धिमान तथा सम्पन्नजन जनसंख्या का विभिन्न स्त्रोतों में विभाजित होना स्वभाविक है। अरस्तू भी जन्म, शक्ति तथा सम्पत्ति की असमानताओं से एक अच्छी सरकार के निर्माण न होने तथा एक बुद्धिमान जन समाज के निर्माण न हो पाने की अवस्थाओं के प्रति चिन्तित था।[8]

प्राध्यापक, समाजशास्त्र,खण्डेलवाल वैश्य स्नातकोत्तर महिला महा., जयपुर

सेन्ट थॉमस और सेंट आगस्टीन ने भी मानव समाजों में श्रेणीबद्ध आधारों की अनिवार्यता को माना था। अरस्तु के दो हजार वर्ष बाद मैकियावली ने यद्यपि असमानता की पद्धति को तो स्वीकार किया पर एक और प्रश्न खड़ा किया कि कौन सी व्यवस्था सुखद हो सकती है। मैकियावली ने श्रेष्ठजनों और जनों के बीच तनावों और संघर्षों का उल्लेख भी किया। असमानता तनाव और संघर्ष लाती है और असमानता उत्पन्न करती है– ये दोनों ही परिलाभ सभी समाजों के लिए थे।[9]

आगे चलकर थॉमस हॉब्स ने असमानता को एक ओर संदर्भ दिया। हॉब्स का मानना था कि असमानता के स्थान पर समानता होनी चाहिए तथा शक्ति एवं प्राधिकारों की असमानता के संदर्भ समाप्त होने चाहिए। प्रत्येक के लिए कुछ ऐसे सामान्य नियम होने चाहिए जिससे असमानता के सदंर्भ गौण हो जाए। बीसवीं शताब्दी के आते–आते एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना की जाने लगी जिसमें समानता के पुट अधिक हों।[10] उपर्युक्त संदर्भ में कार्ल मार्क्स का योगदान भी महत्वपूर्ण है। कार्ल मार्क्स के संदर्भ उत्पादन की प्रक्रियाओं के संदर्भ में थे। मार्क्स यह मानते थे कि इतिहास में उत्पादन प्रक्रियाओं ने समाज में असमान उत्पादन के स्रोत, उत्पादन तथा इन उत्पादक प्रक्रियाओं के नियंत्रक वर्ग उत्पन्न किए हैं। ये वर्ग ही असमानता का निर्माण करते हैं। एक वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी है और दूसरा वर्ग इन उत्पादन के स्वामियों का केवल सहायक है जिसके पास न कोई अधिकार, ना ही पूंजी और ना ही कोई सामाजिक प्रति ठा। अपनी पुस्तक ''कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो'' में मार्क्स ने इस प्रकार के दो वर्गों के बीच शाश्वत शोषण तथा संघर्ष की चर्चा की है। मार्क्स ने लिखा कि ''अब तक के स्थित समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है।''[11]

मार्क्स ने वर्गों की इस धुरी को अपने पूँजीवाद के अध्ययन में विशेष रूप से देखा। पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजी कुछ ही हाथों में सिमट कर, कुछ ही लोगों का एक वर्ग तैयार करती है और शेष सभी केवल श्रमिक ही रह जाते हैं। मार्क्स ने पूँजीवाद में श्रमिकों के स्वत्वहरण के कारण उनकी दयनीयता का वर्णन भी किया। मार्क्स ने इसी दयनीयता को भविष्य की क्रान्ति का कारण भी बताया। मार्क्स की दृष्टि में यह क्रान्ति भविष्य की समानता के समाज का आधार होगी।[12]

असमानता को नापने और उसकी गंभीरता पर विचारों के लिए एक ओर समाजशास्त्री मैक्स वेबर की भी चर्चा की जा सकती है। मैक्स वेबर ने यह स्वीकार किया कि मार्क्सवादी विचारधारा असमानता को पहचानने में समर्थ है लेकिन असमानता के इन संदर्भों को केवल मात्र उत्पादन के तरीकों के संदर्भ में ही नहीं समझा जा सकता। प्रतिष्ठा और सम्मान की असमानता तत्संबंधी वर्गों का निर्माण करते हैं। ठीक इसी प्रकार से शक्ति की रचना में भी व्यक्तियों तथा समूहों के बीच अधिकारों तथा क्षमता का अन्तर होता है और ये अधिकारों तथा क्षमता के अन्तर तथा हितों का प्रतिनिधित्व शक्ति के द्वारा असमानता के सदंर्भ बनाते हैं। इस प्रकार की संभावनाओं का प्रतिनिधित्व राजनीतिक दल भी करते हैं और इसलिए वे बेवर के लिए सामूहिक समूह है।[13]

वेबर के लिए स्ततों की यह रचना वर्ग रचना ही थी, पर मार्क्स की तरह इनके निर्माण तथा शक्ति भी थे। वेबर ने इस संदर्भ में जाति को प्रतिष्ठा समूहों का विभाजन माना था चाहे इस प्रतिष्ठा विभाजन का आधार कुछ भी हो।[14]

असमानता के इन संदर्भों को बाद में समाजशास्त्रियों ने अपने ही तरीके से देखने की कोशिश की है जैसे लिण्ड ने उस अमरीकी समुदाय का अध्ययन किया जिसके पास आर्थिक शक्ति थी और उस आर्थिक शक्ति के माध्यम से समुदाय ने राजनीतिक और सामाजिक शक्ति को प्राप्त कर लिया था। इसी प्रकार से लॉयड वार्नर ने अमरीका में वेबर के प्रारूप के अनुसार प्रस्थिति समूहों का अध्ययन किया। सी. राइट मिल्स ने उस श्वेत वसन वर्ग जिसको आज मध्यम वर्ग के रूप में स्वीकार किया जाता है का अध्ययन किया था और असमानता के बढ़ाने में उसकी भूमिका की चर्चा की थी।[15]

आधुनिक समय में असमानता के कई संदर्भों में परिवर्तन हुआ है जैसे शक्ति का वितरण अब भौतिक सुख–सुविधाओं के वितरण के साथ जुड़ गया है और जीवन के बहुत से अवसरों का बाजार के साथ संबंध हो गया है। आर्थिक संरचनाओं तथा राजनैतिक संरचनाओं दोनों ने ही अलग–अलग तरीके से असमानताओं का निर्माण किया है। इसीलिए इन असमानताओं के विरूद्ध संघर्ष समतामूलक समाजों की अवधारणा के साथ जुड़ा हुआ है। आधुनिक समाजों में इन असमानताओं के कई पक्ष उत्पन्न हो गये हैं जैसे वर्ग, महिलाओं और पुरुषों की असमानता, निवास स्थानों की स्थापना, नृजातीय संबंधों की स्थापना इत्यादि। असमानताओं के इन्हीं स्वरूपों ने समाजशास्त्र में नये विचारों और नये आधारों को प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह बात स्पष्ट है कि समानता और असमानता के प्रश्न सम्पूर्ण समाजों में है। मार्क्सवादी विचारधारा ने यह बात सामने रखी थी कि असमानता हटाने का एक उपाय साधनों के पुनर्वितरण से संभव है लेकिन जो कुछ भी प्रयोग हुए उससे असमानता हटी नहीं है और इसीलिए अब अधिक प्रगतिशील आधारों पर असमानता को परिभाषित करने का प्रयत्न किया जा रहा है जो इस बात पर जोर देती है कि जीवन के अवसरों को सुलभ कराया जाए तथा जीवन शैलियों की विविधता और बहुलता को ध्यान में रखा जाये। स्त्री और पुरुषों की असमानताओं को इन्हीं सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक विभिन्नताओं के बीच विश्लेषित करना आवश्यक हो जाता है।[16]

समानता के पक्ष :

किसी भी समाज में व्यवहारिक रूप से असमानता के कई पक्ष हो सकते हैं जैसे सामाजिक विभेदीकरण (Social Differentation)। ये विभेदीकरण व्यक्ति से व्यक्ति, व्यक्ति से समूह और समूहों से समूहों के बीच में विभिन्न सामाजिक पद तथा समूह कुछ इस तरह से विकसित हो जाते हैं कि उनकी अन्तःक्रिया विभेदीकरण के संबंधों पर केन्द्रित हो जाती

है। इस प्रकार के विभेदीकरण के चार स्वरूप हो सकते हैं – 1. प्रकार्यात्मक विभेदीकरण अथवा श्रम विभाजन जिसका अर्थ है कि विभेदीकरण के आधार पर विभिन्न व्यक्ति विभिन्न निर्धारित कार्य करते हैं। 2. श्रेणी विभेदीकरण जिसका संबंध सीधा जो कुछ भी साधन उपलब्ध है उसके स्वामित्व के आधार पर निर्धारित होता है। 3. जहाँ पर किन्हीं सांस्कृतिक गतिविधियों में व्यक्तियों को कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए अलग–अलग कार्य निर्धारित हैं। 4. प्रतियोगितात्मक विभेदीकरण जहाँ उस प्रतियोगिता को जीतने के लिए कुछ लोगों के पास साधन है और कुछ लोगों के पास साधन नहीं हैं।[17]

किसी भी सामाजिक व्यवस्था में चाहे वह समूह हो, संगठन हो, या समाज हो, श्रेणी विभिन्नता, प्रस्थिति विभिन्नता या संस्तरणीकरण सभी एक ही प्रकार की प्रक्रिया के नाम है। असमानता इन सामाजिक व्यवस्थाओं में जन को इसी प्रकार से बाँटती है।[18]

असमानता के इस संदर्भ में जो भी विभेदीकरण उत्पन्न होता है उसके प्रतिबिम्ब समाज के विविध पक्षों में आसानी से देखे जा सकते हैं। मैक्स वेबर ने जब नौकरशाही के आदर्श प्रारूप की रचना की थी तो उसने सारी रचना को विभेदीकरण के आधार पर संगठनीय रचना का नाम दिया था। वेबर का दृष्टिकोण था कि इस श्रेणीबद्धता में ना केवल पद विभिन्नता है बल्कि साथ ही साथ महत्वपूर्ण कार्यों के आधार पर इन पदों को मिलने वाली सुविधाओं, सम्मान तथा कार्य के एवज में मिलने वाले धन की भी भिन्नता है। संगठनीय क्षमता के लिए विभेदीकरण के इस स्वरूप को मैक्स वेबर ने आधुनिक सामाजिक व्यवस्थाओं का एक आधार माना था।[19] इसी प्रकार से विभिन्न जनजातीय समूहों में भावनात्मक दृष्टि से श्रेणीबद्धता का परिणाम पारस्परिक जलन, घृणा और सांस्कृतिक संघर्ष है। अमरीका में काले और गौरों का संदर्भ इसी आधार पर देखा जा सकता हैं। व्यवसायों के प्रति भी ये ही असमानता से बनी श्रेणी अपने व्यवसायों की प्रतिबद्धता को समाप्त नहीं करना चाहती और ना ही अपनी विशेषज्ञता को किसी ओर को देना चाहती। एक प्रकार से असमानता भेदभाव का जनक है। आधुनिक समाजों में बहुत से संदर्भ इन्हीं आधारों पर अतिवाद (Extremeism) के साथ जुड़ गये है।[20] समाजशास्त्रियों ने असमानता के संदर्भ को उससे उत्पन्न होने वाली व्यवस्थाओं का भी परीक्षण किया है। विशेष रूप से उत्पन्न होने वाली दो अवस्थाओं का उल्लेख समाजशास्त्रियों ने विशद् रूप में किया है। इन समाजशास्त्रियों का मानना है कि असमानता का संबंध समाज में अवसरों और जीवन शैलियों से निकट का रहा है।[21] जिन समाजों में अपनी प्रस्थितियों के प्रति चेतन्यता अधिक होती है, उनके जीवन मूल्य वैसे ही बन जाते हैं और वैसे ही उनकी परिस्थितियों के कारण पहचान भी बन जाती है। विभेदीकरण की प्रक्रिया में यह पहचान विभिन्न समूहों के लिए महत्वपूर्ण होती है। इसी पहचान के लिए अथवा इस पहचान को बनाये रखने के लिए पारस्परिक संघर्ष तथा तनावों की सृष्टि हो जाती है। बच्चों के समाजीकरण, सामाजिक तथा राजनैतिक मनोवृत्तियाँ और समाज के संबंध में उनके दृष्टिकोण इसी शैली का भाग होते हैं। महिलाओं के संबंध में भी जीवन शैली के इन विविध स्वरूपों को भी देखा जा सकता है और महिलाओं की प्रस्थिति के संदर्भ में जीवन शैली के संकेतांक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। प्रकार्यवादी समाजशास्त्रियों ने उन प्रकार्यों की चर्चा की है जो असमानता के संदर्भ में निर्मित सामाजिक संस्तरण को समाज के लिए महत्वपूर्ण बनाते हैं। इन समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि असमानता वस्तुतः सामाजिक प्रबंधन है जिसमें क्षमता वाले व्यक्ति को अधिक पुरूस्कार मिलता है और कम क्षमता वाले व्यक्ति को कम पुरूस्कार। असमानता तथा उससे निर्मित सामाजिक संस्तरण समाज के लिए अपरिहार्य है।[22] समाज में असमानता के आधार पर निर्मित इन स्त तों को प्रकार्यवादी सार्वभौमिक मानते हैं क्योंकि ये सार्वभौमिक हैं और इनके लिए कुछ सामाजिक प्रकार्य भी हैं, श्रम विभाजन भी इसी से संभव है, क्योंकि समाज के प्रति इनके कर्तव्यों की पूर्ति होती है और इनसे सामाजिक लाभों को प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन यह विचार अपने स्थान पर है। समाजशास्त्रियों ने इन विचारों की आलोचना की है और वैकल्पिक रूप में अन्य सैद्धान्तिक आधारों को भी स्वीकार किया है।

असमानता और संस्तरण :

असमानता के संदर्भों ने सामाजिक संगठनों और सामाजिक व्यवस्थाओं के विभिन्न रूप भी स्थापित किये हैं। उच्चता और निम्नता के क्रमों को सामाजिक संस्तरणों के रूप में भी स्थापित किया गया है समाज के इतिहास में चार प्रकार के संस्तरणों की व्यवस्था की गई है– दास्ता, जागीरी, वर्ग और जाति। इनमें दास्ता इतिहास की सबसे पुरानी संस्तरणीय व्यवस्था है। यह व्यवस्था जिसको मार्क्स ने भी ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रारंभिक स्वरूप में स्वीकार किया है, दास्ता मनुष्य द्वारा मनुष्य के ऊपर आधिपत्य का प्रतीक थी। यह आधिक्य सम्पूर्ण था तथा इस व्यवस्था में गुलाम एक पदार्थ के रूप में अधिक था जिसको बेचा जा सकता था और खरीदा जा सकता था। दास्ता एक प्रकार से सामंतवाद का प्रारंभ था जिसके आधार पर ही बाद में गुलामों के माध्यम से नई सत्ताएँ स्थापित हुई। उपनिवेशवाद के प्रारंभ में उत्पादन के लिए मनुष्यों की जरूरत थी जिसकी पूर्ति उपनिवेशवादियों ने दूसरे देशों से, विशेष रूप से अफ्रीका और एशिया के देशों से मजदूरों को गुलामों की तरह भर्ती कर पूरा किया था। अमरीका जैसे देश में भी प्रारंभ में यह कार्य गुलामों की भर्ती के माध्यम से ही हुआ था लेकिन बाद में कानून द्वारा इस प्रथा को समाप्त किया गया था। मार्क्स के अनुसार यह व्यवस्था दो वर्गों की व्यवस्था थी जिसमें एक वर्ग अति शक्तिशाली था और दूसरा वर्ग अति कमजोर, जिसके पास कोई सामाजिक अधिकार नहीं था।जागीर की व्यवस्था एक बन्द प्रकार की व्यवस्था थी लेकिन जाति से इसका स्वरूप भिन्न था। यूरोप के सामंती दिनों में इस प्रकार की व्यवस्था का अपना स्थान था। इस प्रकार की व्यवस्था में पदों का विभाजन प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं के आधार पर

था। पदों के आधार पर इस प्रकार से बनने वाले स्वरूपों में एक–दूसरे के ऊपर निर्भरता थी और ये सभी स्त त एक–दूसरे के पूरक थे। एक स्त त से दूसरे स्त त में जाना संभव था। जागीरी व्यवस्था अपने सदस्यों के लिए प्रावधानों में आर्थिक कर्तव्यों और राजनीतिक अधिकारों तथा सामाजिक प्रचलनों की द ि ट से कठोर थी। स्त त के सदस्यों की पहचान भी इन्हीं प्रावधानों के आधार पर होती थी। किन्तु सामंतवादी समाज के ये स्वरूप अब देखने को नहीं मिलते।[23]तुलनात्मक दृष्टि से वर्ग संरचनाएँ, औद्योगिक क्रान्ति तथा पूँजीवादी समाज की व्यवस्थाओं के साथ उभरी। तकनीकी दृष्टि से यदि कहा जाए तो वर्ग व्यवस्था जाति तथा जागीरी व्यवस्थाओं में भी देखी जा सकती है, लेकिन इन व्यवस्थाओं में वर्ग के वे अर्थ नहीं हैं जो जागीरी अथवा जाति की सम्पूर्ण व्यवस्थाओं में देखे जाते हैं। कार्ल मार्क्स ने उत्पादन की व्यवस्था के आधार पर वर्गों को देखने का प्रयास किया था। मार्क्स के अनुसार उत्पादन में कार्य का विभाजन तथा समाज में सम्पत्ति का विभाजन, वर्ग संरचना का निर्माण करते हैं। इसी आधार पर उसने दो वर्गों बुर्जवाजी और सर्वहारा तथा एक मध्यम वर्ग पेट्रिट बुर्जवाजी से समाज की संरचना के निर्माण का उल्लेख किया था। मार्क्स के लिए यह संरचना शोषण की संरचना थी। मार्क्स ने इस बात को स्वीकार किया कि अब तक के इतिहास में हमेशा से वर्ग संरचना का यह शोषण स्वरूप निरन्तर चलता आया है। पूँजीवाद इसका अपवाद नहीं है।[24]

कार्ल मार्क्स और मार्क्सवादियों ने वर्ग संरचना को संघर्ष तथा सोपान परिवर्तन का प्रतीक माना। मार्क्सवादी रचनाकार अभी भी यह मानते हैं कि वर्ग भवि य में संघर्ष के लिए बने हुए हैं और इन्हीं संघर्षों से समाज की संरचनाओं के स्वरूप बदलते हैं। लेकिन बाद में कई समाजशास्त्रियों ने वर्गों को अपनी ही दृष्टि से देखा जैसे मैक्स वेबर ने वर्गों के आधार की एक अलग व्याख्या की। वेबर का मानना था कि मार्क्स का वह दृष्टिकोण सही था जिसमें उसने उत्पादन के आधार पर वर्गों की संरचना के निर्माण की चर्चा की थी पर वर्गों का निर्माण शक्ति और प्रतिष्ठा के संबंधों पर भी संभावित हैं।[25]

कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर के इन दृष्टिकोणों के अलावा वर्गों के अर्थ, वर्ग संरचना के परिणाम और वर्गों से निर्मित होने वाली व्यवस्थाओं पर बहुत कुछ लिखा गया है। यह कहा गया कि सामाजिक वर्ग विशिष्ट समूह है जिनका बहुत बड़ा दायरा है और जो अपने आधीन अन्य समूहों को अपने अधिकार क्षेत्र में रखते हैं तथा अपनी संस्कृति तथा सामाजिक पहचान के प्रति सजग हैं। [26] समाजशास्त्रियों ने भी विचार व्यक्त किये हैं कि आधुनिक समय में वर्ग संरचनाएँ स्थिर नहीं है। आर्थिक विकास ने मध्यम वर्गो की उत्पत्ति भी की है और इन मध्यम वर्गों ने व्यवस्थाओं में एक नया स्वरूप प्रदान किया है। समाजशास्त्रियों की यह भी मान्यता है कि वर्गों की संरचना केवल औद्योगिक समाजों में ही नहीं बल्कि गैर–औद्योगिक समाजों में भी देखी जा सकती है। विशेष रूप से प्रजातांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था में।[27] इस संदर्भ में आधुनिक समय में महिलाओं को भी अब एक वर्ग के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। लिंग ;ळमदकमतद्ध की परिभाषाओं में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि महिला और पुरुषों के विभेद वर्ग के दायरे में अधिक देखे जा सकते हैं।

सन्दर्भ

1. Barry Peter : Beginning Theory, Manchester, Manchester University Press, 1995. p.123.
2. Beteille Andre : "Equality and Universality", Economic & Political Weekly, Vol. XXXVI No. 38, September 22-28, 2001, P. 3619.
3. Berlin, Isaiah : Concepts and Categories, London, Hogarth Press, 1978, P. 96.
4. Allen Robert : The new penguin English dictionary, New Delhi, Penguin, 2000, p. 469.
5. Government of India Publications, The Constitution of India, 2000.
6. Marshall, Gorden : Oxford dictionary of Sociology, Great Britain, Oxford University Press, 1998, p. 313.
7. Plato. quoted in Twmin Melvin Social Startification. Prentice Hall. 1967.
8. Ariststle. Politics. New York. Modern Library. 1943.
9. Sent Thamos : quoted in twmin. evid.
11. Mills C. Wright. The Marsxts. London. Pelican. 1962. P. 18
12. Marx K. Capital. Moskey Progress Publishers. 1948.
13. Bendix Reinhard. Max Weber an Intellectual Portrait. New York. Double Day and Co. 1962- P 85
14. Evid Page 92.
15. Mills C. Wright & Gerth. From Max Wever. New york. Oxford University press. 1958. P. 194.
16. Giddnes. Anthony : Sociology. New Delhi. Polity press. 2001 P. 340.
17. North C.C. : Social Differntiation. Chaper hill. University of North Carolina Press. 1996. P. 211
18. Svalistoge Kaare : Social Differentiation in Faris Robert E.L. Hand book of Modern Sociology. Chicago. Kand Menally & Company. 1964 p. 530.
19. Bendix. Reinhard : Max Weber on intellectual portrait. New York. Anchor Book. 1962, P. 423.
20. Johnson Harry M.: Sociology : A systematic Introduction. Bombay. Allied publishers. 1966. O, 40-41.
21. Tumin. Melvin M.: Social Stratification. New Delhi. Prentice Hall of india. 1969. P. 56.
22. Davis & moore: Some Principles of Stratification in Coser Levis A. Sociological Theory. New York. The Macmillan Company. 1966. P. 428.
23. Kelly John D.: The sociology of Stratification A Theory of the power Structure of the Society. Indianan. State University press. 1961 P. 428.
24. Marx K and Engles F.: Manifesto of the Communist Party Moscow. progress publishers. 1975. P. 41.
25. Weber Max: The theory of social and Economic organization. New York. the free press. 1968. p. 424-25.
26. Aron R: Two definitions of class in Andre Bereille : Social inequaloty. London. penguin Books. 1969. P. 67.
27. Bottomore. T.B. : Classes in modern society. London. Geogre allen & Unwin Ltd. 1965. P 66.